भूखे और कुपोषित बच्चों का मध्यप्रदेश

सुनील

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के तीसरे दौर (2005-06) के आंकड़ों से पता चलता है कि अभी भी इस देश के तीन वर्ष से छोटे बच्चों में लगभग आधे (46 प्रतिशत) कुपोषित हैं और 79 प्रतिशत बच्चे कमज़ोर और खून की कमी से ग्रस्त हैं। दुनिया के सबसे ज़्यादा कुपोषित बच्चे भारत में ही हैं। इनकी संख्या 5.7 करोड़ है, जो दुनिया के कुल कुपोषित बच्चों में एक-तिहाई से ज़्यादा है। यही नहीं, भारत में एनीमिया और कमज़ोरी से ग्रस्त महिलाओं का प्रतिशत भी पिछले सात वर्षों में 52 से बढ़कर 56 प्रतिशत हो गया है। भारत सरकार ने भी 2006-07 की आर्थिक समीक्षा में स्वीकार किया है कि 'स्वास्थ्य मानकों पर भारत की स्थिति न केवल चीन और श्रीलंका की तुलना में, बल्कि कुछ मामलों में बांग्लादेश और नेपाल से भी दयनीय है'।

स्वास्थ्य मानकों पर भारत की स्थिति न केवल चीन और श्रीलंका बल्कि कुछ मामलों में बांग्लादेश और नेपाल से भी दयनीय है

पिछले दिनों, एक अंतर्राष्ट्रीय संस्था ने विश्व भूख सूचकांक तैयार किया, तो दुनिया के 118 देशों में भारत का स्थान काफी नीचे (94) था। इथियोपिया (93), पाकिस्तान (88) और चीन (47) हमसे ऊपर थे।

कुपोषण और भूख की यह स्थिति पूरे भारत का औसत है। कई प्रांतों की स्थिति और खराब है। मध्यप्रदेश ऐसा ही प्रांत है, जिसकी हालत खराब है और लगातार खराब होती जा रही है।

पहला राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण 1992-93 में हुआ था, उसके बाद 1998-99 में और 2005-06 में हुए। पहले सर्वेक्षण में भी बाल कुपोषण में मध्यप्रदेश की स्थिति खराब थी। वह सबसे खराब राज्यों में नीचे से सातवें नंबर पर था। दूसरे सर्वेक्षण में तुलनात्मक रूप से उसकी स्थिति बहुत खराब रही और वह बाल कुपोषण में भारत के राज्यों में पहले नंबर पर पहुंच गया। छत्तीसगढ़ से अलग होने के बाद शेष मध्यप्रदेश की स्थिति और खराब हुई है। तीसरे सर्वेक्षण में मप्र भारतीय राज्यों में सबसे ज़्यादा बाल कुपोषण वाला राज्य बनकर उभरा है।

भूतपूर्व संयुक्त मध्यप्रदेश में 1992-93 में तीन वर्ष से छोटे 48.5 प्रतिशत बच्चे कुपोषित थे, जो 1998-99 में बढ़कर 55.1 प्रतिशत हो गए। इसके बाद अगले सात वर्षों में नए मध्यप्रदेश में कुपोषित बच्चों का अनुपात 53.5 प्रतिशत से बढ़कर 60.3 प्रतिशत हो गया, जबकि छत्तीसगढ़ में 60.8 से घटकर 52.1 प्रतिशत। झारखंड, बिहार, छत्तीसगढ़, उत्तरप्रदेश आदि अन्य राज्यों में भी कुपोषण की दर ऊंची है, लेकिन मध्यप्रदेश से कम है। उड़ीसा में तो इन सात वर्षों में कुपोषित बच्चों के प्रतिशत में उल्लेखनीय कमी आई है और वह 54.4 से घटकर 44 प्रतिशत हो गया है। इस प्रकार मध्यप्रदेश उन राज्यों में है, जहां कुपोषण लगातार बढ़ रहा है। प्रदेश में ग्रामीण बच्चों की हालत ज़्यादा खराब है; उनमें कुपोषण का प्रतिशत 63 है जबकि शहरी बच्चों में कुपोषण की दर 53 है।

इन सर्वेक्षणों में एनीमिया का भी पता लगाया गया है। मध्यप्रदेश के 6 से 35 माह उम्र तक के बच्चों में एनीमिया से पीड़ित बच्चों का प्रतिशत 1998-99 में 71 था जो 2005-06 में बढ़कर 83 हो गया। वर्तमान में सिर्फ उत्तरप्रदेश और बिहार में ही मध्यप्रदेश से ज़्यादा एनीमिया पीड़ित बच्चे हैं। मध्यप्रदेश के गांवों में 85 प्रतिशत और शहरों में 75 प्रतिशत बच्चे एनीमिया से पीड़ित हैं।

शिशु मृत्यु दर के हिसाब से भी मध्यप्रदेश की हालत देश में सबसे बुरी है। वर्ष 2005 के आंकड़े बताते हैं कि मध्यप्रदेश में जन्म लेने वाले 1000 बच्चों में से 76 अपना

पहला जन्म दिन नहीं देख पाते। प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्र में तो यह आंकड़ा 84 प्रति हज़ार है। अखिल भारतीय स्तर पर शिशु मृत्यु दर 58 प्रति हज़ार है। अन्य देशों से तुलना करें तो चीन में यह दर 32, थाईलैण्ड में 18, श्रीलंका में 15, मलेशिया में 9, जापान, सिंगापुर, नार्वे तथा स्वीडन में मात्र 3 है।

बच्चों के स्वास्थ्य का सीधा सम्बंध माताओं के स्वास्थ्य से है। इस मामले में भी मध्यप्रदेश की हालत काफी नाज़ुक हैं। सर्वेक्षण बताते हैं कि देश भर में वर्ष 1998-99 में 15 से 49 वर्ष की विवाहित महिलाओं में से 52 प्रतिशत एनीमिया की शिकार थीं। सात वर्ष बाद यह बढ़कर 56 प्रतिशत हो गई। मध्यप्रदेश की महिलाओं में भी यह प्रतिशत 49 से बढ़कर 58 हो गया। यद्यपि मध्यप्रदेश पहले नंबर पर नहीं है, फिर भी जहां अनेक प्रांतों में स्थिति सुधर रही है, मध्यप्रदेश में स्थिति बिगड़ी है।

जिन महिलाओं का कद व वज़न का अनुपात यानी बॉडी मास इन्डेक्स (बीएमआई) सामान्य से कम पाया गया, उनका प्रतिशत भी इन सात वर्षों में मध्यप्रदेश में 35 से बढ़कर 40 हो गया। जबकि राष्ट्रीय स्तर पर यह 36 से घटकर 33 पर आया है। इसी प्रकार प्रसव के दौरान महिलाओं की मृत्यु दर वर्ष 2001-03 में मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ मिलाकर प्रति एक लाख बच्चों के जन्म पर 379 थी, जबकि राष्ट्रीय औसत 301 था। इसकी तुलना श्रीलंका (92), थाईलैण्ड (44), चीन (36), सिंगापुर (30), कोरिया (20), जापान (10), स्पेन व ऑस्ट्रेलिया (4) तथा स्वीडन (2) से की जा सकती है।

साफ है कि मध्यप्रदेश में बच्चों और महिलाओं के स्वास्थ्य एवं पोषण की स्थिति बहुत खराब है और लगातार बिगड़ती जा रही है। इसके अनेक कारण हैं। सबसे बड़ा कारण गरीबी एवं बेरोज़गारी है।

मध्यप्रदेश देश के सबसे गरीब राज्यों में से एक है। वर्ष 2004-05 में मध्यप्रदेश में 37.21 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन कर रहे थे, जबकि राष्ट्रीय स्तर पर यह आंकड़ा 28.27 था। लेकिन आंकड़ों से स्पष्ट है कि इससे कहीं ज़्यादा संख्या में लोग कुपोषण, कमज़ोरी व बीमारियों के शिकार हैं। इससे गरीबी के सरकारी आंकड़ों की विश्वसनीयता पर ही सवाल लग जाता है। इतना तो तय है कि मध्यप्रदेश में अधिकांश लोग इस हालत में पहुंच गए हैं कि वे न तो अपने बच्चों और महिलाओं को ठीक से पूरा भोजन दे पा रहे हैं, न बीमारियों का इलाज करा पा रहे हैं।

गरीब लोगों के लिए भोजन का एक सहारा राशन की व्यवस्था होती है। लेकिन पिछले कुछ समय से योजनाबद्ध ढंग से गरीबी रेखा के नीचे के परिवारों की सूची में से बड़ी संख्या में नाम काटकर अनेक गरीबों को सस्ते अनाज से वंचित किया गया। राशन वितरण प्रणाली का भ्रष्टाचार तो है ही। पिछले काफी समय से सूची में शामिल परिवारों को भी निर्धारित 35 किलो से काफी कम व घटिया अनाज दिया जा रहा है।

मध्यप्रदेश में व्यापक अशिक्षा, अंध विश्वास और सामाजिक कुरीतियों को भी कुपोषण के लिए ज़िम्मेदार ठहराया जा सकता है। सर्वेक्षण में पाया गया कि प्रदेश में अभी भी आधी से ज़्यादा महिलाओं की शादी 18 वर्ष से कम उम्र में हो रही है। कम उम्र में प्रसूता होने पर कमज़ोर बच्चों का पैदा होना तथा महिलाओं का स्वास्थ्य कमज़ोर होना स्वाभाविक है। सर्वेक्षण में यह भी पाया गया कि एक गलत विश्वास के कारण मात्र 15 प्रतिशत शिशुओं को ही जन्म के एक घंटे के अंदर स्तनपान कराया जाता है।

स्वास्थ्य एवं पोषण के मोर्चे पर मध्यप्रदेश की इस शोचनीय स्थिति की पूरी व्याख्या सिर्फ गरीबी एवं अशिक्षा से नहीं होती। मध्यप्रदेश से ज़्यादा या इतने ही गरीब एवं अशिक्षित कई अन्य राज्यों की स्थिति इस मामले में बेहतर है। इस स्थिति का गहरा सम्बंध सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं एवं सरकारी योजनाओं की असफलता से भी है। वर्ष 2001-02 के आंकड़े बताते हैं कि जच्चा-बच्चा स्वास्थ्य कार्यक्रमों पर प्रति व्यक्ति सालाना खर्च मध्यप्रदेश में सबसे कम 16.8 रुपए था, जो राष्ट्रीय औसत का आधा था। निजीकरण एवं वैश्वीकरण की नई नीति के तहत इस

प्रदेश में भी सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं को लगातार कम किया जा रहा है, बिगाड़ा जा रहा है एवं महंगा किया जा रहा है। दवाइयां भी महंगी हो रही हैं। निजी डॉक्टरों व अस्पतालों पर कोई नियंत्रण नहीं है। गरीब लोग मजबूर होकर या तो इलाज नहीं करा पाते हैं या नीम-हकीमों या झाड़-फूंक की शरण में जाते हैं। एक बीमारी परिवार का बजट लंबे समय के लिए बिगाड़ देती है और उस व्यक्ति को लंबे समय तक कमज़ोर व कुपोषित बना देती है। कुछ मौसमों में परिवार के परिवार और गांव के गांव बीमारियों से ग्रस्त देखे जा सकते हैं। इनमें से कुछ बीमारियां कुपोषण को गंभीर बनाने के लिए ज़िम्मेदार हैं।

कहते हैं, स्वास्थ्य के निजीकरण और बाज़ारीकरण के इन दुष्परिणामों को हल्का करने के लिए पिछले कुछ समय से अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और अंतर्राष्ट्रीय निर्देशन में अनेक योजनाएं शुरू की गई हैं। प्रजनन व बाल स्वास्थ्य कार्यक्रम के तहत पूरे देश में आंगनवाड़ियों का जाल बिछाया गया है तथा गर्भवती माताओं और बच्चों के लिए पूरक आहार, टीकाकरण तथा स्वास्थ्य निगरानी का तंत्र बनाया गया है। जननी सुरक्षा योजना के तहत अस्पताल में ही प्रसव कराने पर बहुत ज़ोर दिया जा रहा है और इसके लिए प्रोत्साहन राशियां भी बांटी जा रही हैं। 'एकीकृत बाल विकास सेवाएं' भी चल रही हैं। वर्ष 2005 से विश्व बैंक की मदद से 'राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन' शुरू किया गया है। 'आशा' कार्यकर्ताओं की नियुक्तियां इसी के तहत की जा रही हैं। राष्ट्रीय मातृत्व सहायता योजना, राष्ट्रीय एनीमिया नियंत्रण कार्यक्रम आदि भी चल रहे हैं। इनके अतिरिक्त, मध्यप्रदेश सरकार ने गरीबों के 20 हज़ार रुपए तक के मुफ्त इलाज की 'दीनदयाल अंत्योपचार योजना' शुरू की है। कुपोषण से प्रभावित कुछ इलाकों के लिए 'शक्तिमान' योजना भी हाल में शुरु की गई है।

लेकिन ऊपर मध्यप्रदेश की जो हालत बयां की गई है, वह इन तमाम सरकारी योजनाओं और कार्यक्रमों पर एक तमाचा है। न केवल ये अपने लक्ष्य में असफल रही हैं, बल्कि इससे यह भी ज़ाहिर हो गया है कि वैश्वीकरण की नीतियों के दुष्प्रभावों को कुछ योजनाओं से दूर नहीं किया जा सकता। यह स्पष्ट है कि जनता के स्वास्थ्य की ज़िम्मेदारी सरकार को लेनी होगी, इसका कोई विकल्प नहीं है।

मध्यप्रदेश की स्थिति का एक पहलू इसकी दलित एवं आदिवासी आबादी है। मध्यप्रदेश एक वन-बहुल एवं आदिवासी-बहुल प्रांत है और यहां अनुसूचित जातियों और जनजातियों की आबादी का अनुपात काफी है। कुपोषण की दरें उनमें मध्यप्रदेश के औसत से भी ज़्यादा है और इससे उनकी दुर्दशा का अंदाज़ लगाया जा सकता है। प्रदेश में जल-जंगल-ज़मीन आदि प्राकृतिक संसाधनों से स्थानीय समुदायों को लगातार वंचित किया जा रहा है। अनेक बांधों, कारखानों, राष्ट्रीय उद्यानों व अभयारण्यों से बड़ी तादाद में लोगों को विस्थापित-वंचित किया जा रहा है। इन सबका विपरीत असर लोगों की जीविका, पोषण और स्वास्थ्य पर पड़ा है। उल्लेखनीय है कि तमाम वन क्षेत्रों में लोगों के भोजन एवं पोषण का एक प्रमुख स्रोत जंगल भी होते हैं, जिनसे उन्हें वंचित किया जा रहा है।

मध्यप्रदेश की सरकारें समय-समय पर दावा करती रही हैं कि उन्होंने अपने प्रदेश को 'बीमारू' की श्रेणी से निकाल लिया है। आंकड़ों से साफ है कि हकीकत इसके विपरीत है। यह एक प्रकार का आपातकाल है और इसके लिए युद्ध स्तर पर कार्यवाही की ज़रूरत है। इससे न केवल वर्तमान, बल्कि भविष्य भी प्रभावित हो रहा है। विशेषज्ञों का मानना है कि बच्चे का 90 प्रतिशत मानसिक एवं शारीरिक विकास पहले तीन वर्षों में तय हो जाता है। यह भारतीय संविधान के नीति निर्देशक सिद्धांत की भी अवहेलना है, जिसमें भारत सरकार को बच्चों का स्वस्थ विकास सुनिश्चित करने का निर्देश दिया गया है। इस धरती पर जन्म लेने वाले हर बच्चे का अधिकार है कि उसे पूरी खुराक, पूरी देखभाल व इलाज तथा शिक्षित होने का अवसर मिले। हमारे लोकतंत्र की भी यह परीक्षा है। लेकिन सरकारों की प्रतिक्रिया आम तौर पर रस्म अदायगी जैसी रही है। मध्यप्रदेश की मौजूदा सरकार का तो ज़्यादा ध्यान प्रदेश में पूंजी को आकर्षित करने पर ही

है। एक तरफ ग्लोबल इन्वेस्टर्स मीट का आयोजन हो रहा है, दूसरी तरफ कुपोषण व भूख से मौतों की खबरें प्रदेश के कई ज़िलों से आती रहती हैं। लेकिन सरकार का रवैया उन्हें नकारने, लीपापोती करने और दबाने का और कुपोषण के आंकड़ों को भी कम करके दिखाने होता है। ***(स्रोत विशेष फीचर्स)***